

---

# इकाई 1 राष्ट्र और राष्ट्रवाद\*

---

## संरचना

- 1.1 प्रस्तावना
- 1.2 राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य को समझना
  - 1.2.1 राष्ट्रवाद का प्रश्न
  - 1.2.2 राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य को परिभाषित करना
- 1.3 राष्ट्रवाद के सिद्धांत के सामने चुनौतियां
- 1.4 राष्ट्रवाद के सिद्धांत
  - 1.4.1 गैर आधुनिकतावादी सिद्धांत
  - 1.4.2 आधुनिकतावादी सिद्धांत
- 1.5 भारतीय राष्ट्रवाद
- 1.6 सारांश
- 1.7 अभ्यास

---

## 1.1 प्रस्तावना

---

यह पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। इसमें आपको राष्ट्रवाद की अवधारणाओं से परिचित कराने की कोषिष की गई है कि इसे इतिहासकारों और दूसरे सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा किस तरह से समझा गया।

जैसा कि आप जानते हैं भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ चलने वाला एक महान और लंबा संघर्ष था। राष्ट्रवाद इसकी मुख्य विचारधारा और हथियार था जिसकी मदद से इस संघर्ष को संचालित किया गया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संदर्भ में भारतीय राष्ट्रवाद दो प्रमुख विचारों का प्रतिनिधित्व करता था: साम्राज्यवाद विरोध और राष्ट्रीय एकता। दूसरे शब्दों में कोई भी शख्स, आंदोलन या संगठन इन दोनों विचारों को साथ लेकर चलता है उसे राष्ट्रवादी माना जा सकता है।

लेकिन इस बात को याद रखना जरूरी है कि राष्ट्रवाद केवल भारत तक सीमित नहीं था। यह केवल एशिया और अफ्रीका के देशों तक सीमित नहीं था जो विदेशी शासन के मातहत आने के बाद उससे छुटकारा पाने के लिए संघर्ष किए। राष्ट्रवाद सही मायने में एक वैश्विक अवधारणा थी जो दुनिया के बहुत सारे देशों में उभरी और अपनी मौजूदगी का अहसास कराया। ऐसा कहा जाता है कि आधुनिक विषय में राष्ट्रवाद सबसे मजबूत राजनीतिक ताकत था। इसने अपने आपको राजनीति, विचारधारा, आंदोलन, विष्वास, व्यवस्था, एक भावना और एक जुनून के तौर पर पेश किया। बड़ी संख्या में कहानियां, कविताएं, उपन्यास और साहित्य राष्ट्रवाद को विषय बनाकर लिखे गए हैं। ऐसा लगता है कि राष्ट्रवाद एक जटिल अवधारणा है जो बिल्कुल अलग और विपरीत परिस्थितियों में सामने आया है। यूरोप के विकसित औद्योगिक समाजों और एशिया और अफ्रीका के अविकसित समाजों दोनों राष्ट्रवाद के जादू से नहीं बच सके। ऐसे समाज जिनके बीच बहुत कम चीजें साझी थीं वो भी तकरीबन उसी समय (18वीं से 20वीं सदी) राष्ट्रवादी अवधारणा की परिधि में आए। इसलिए ऐसा लगता है कि संदर्भ से जुड़ी विशिष्ट व्याख्या के अलावा इसके उभार के पीछे की एक सामान्य और

सार्वभौमिक व्याख्या जरूरी है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो हम राष्ट्रवाद के सिद्धांत की बात कह रहे हैं। इस सिद्धांत (या सिद्धांतों) को आमतौर पर राष्ट्रवाद के प्रति सीधे जिम्मेदार होनी चाहिए। यह इकाई आपके सामने राष्ट्रवाद के कुछ सामान्य सिद्धांतों की व्याख्या करेगी।

---

## 1.2 राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य को समझना

---

यह इकाई तीन चीजों पर केंद्रित करेगी: 1) राष्ट्रवाद से जुड़ी कुछ प्रमुख बहसों और विवाद, 2) राष्ट्रवाद के बहुत सारे सिद्धांत जिन्हें सामाजिक वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित किया गया है, और 3) इन सिद्धांतों का भारत के लिए एक मामले के अध्ययन के तौर पर प्रासंगिकता। राष्ट्रवाद का असली सवाल क्या है? और यह महत्वपूर्ण क्यों है?

### 1.2.1 राष्ट्रवाद का प्रश्न

जब हम राष्ट्रवाद के बारे में बात करते हैं तो हम 18वीं और 20वीं सदी के बीच के समय के बारे में बोलते हैं। यह वही काल था जब बड़े और छोटे समुदायों की एक बड़ी तादाद एक बड़े और एकरूप समुदायों (तुलनात्मक तौर पर एक छोटी संख्या) में तब्दील हुई। इसे और आसान तरीके से इस तरह से कहा जा सकता है छोटे समुदायों की एक बड़ी संख्या बड़े समुदायों की एक छोटी संख्या में तब्दील होना शुरू हो गई। आकारों के विस्तार ने संख्याओं की अधिकता को विस्थापित कर दिया। नये समुदाय नये रिश्तों और एकजुटता के निषानियों के जरिये सामने आये। नई एकजुटता कुछ यूँ विकसित हुई जो प्रकृति में बिल्कुल निजी नहीं थी लेकिन बहुत मजबूत थी। समूह और व्यक्ति एक दूसरे से परिचित नहीं होने के बावजूद खुद को राष्ट्र के नाम से पुकारे जाने वाले नये बने बड़े अदृश्य समुदाय का सदस्य मानने लगे। इस प्रक्रिया में जो चीज शामिल थी वो नये तरह की एक 'कल्पना' थी। नये समुदायों का अपना निर्माण सबसे अलग एक कल्पना के जरिये हो रहा था। नये समुदाय पारस्परिक, संसाधनों की साझा हिस्सेदारी या परिचय के जरिये नहीं बन रहे थे। इतिहास में ज्यादातर समुदाय परिचय (ग्रामीण समुदायों, भाषा समुदायों या दूसरे स्थानीय समूह) पर आधारित रहे हैं। इसके विपरीत नया राष्ट्रीय समुदाय अपरिचय या फिर अनामिता पर आधारित था। नया समुदाय एक साथ प्रत्येक दिन के साझे अनुभवों पर नहीं बल्कि एक कुछ निश्चित किस्म की कल्पना के आधार पर लाया गया। इस तरह से संक्षेप में राष्ट्रवाद के अगुवा सिद्धांतकार बेनेडिक्ट एंडरसन के हवाले से कहें तो राष्ट्र 'परिकल्पित समुदाय' हैं।

इससे भी आगे इन नये समूहों और समुदायों ने इस बात पर भी जोर डालना शुरू कर दिया कि उनका अपना प्रतिनिधि राज्य होना चाहिए। दूसरे शब्दों में राज्य व्यवस्था बाहरी, अपरिचित समूहों और समुदायों की (जैसा कि आमतौर पर इतिहास में होता रहा है) नहीं होनी चाहिए बल्कि उन्हीं समुदायों से निकला होना चाहिए और उनका प्रतिनिधि होना चाहिए। यह सच में एक विशिष्ट स्थिति थी। राज्य और समाज के बीच यह अनुरूपता या पहचान कुछ बिल्कुल अद्भुत और असामान्य था। परिस्थिति की ये नई विशेषताएं राष्ट्र, राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य की परिभाषित विशेषताएं बन गईं। राष्ट्रवाद के एक और सिद्धांतकार एर्नेस्ट गेलनर ने अपनी किताब के प्रारंभिक पैराग्राफ में इन शब्दों को कुछ इस तरह से परिभाषित किया: "राष्ट्रवाद प्राथमिक तौर पर एक राजनीतिक सिद्धांत है जो इस बात को कहता है कि राजनीतिक और राष्ट्रीय यूनिट को एक समान होना चाहिए। राष्ट्रवाद एक भावना, या एक आंदोलन के तौर पर इन सिद्धांतों के जरिये सबसे बेहतर तरीके से परिभाषित किया जा सकता है। राष्ट्रवादी भावना सिद्धांतों के उल्लंघन से पैदा होने वाले गुस्से का अहसास या फिर उसके पूरे होने पर मिलने वाली खुशी का अहसास है। एक

राष्ट्रवादी आंदोलन एक ऐसी चीज है जो इस तरह की भावना से प्रेरित है।" (एर्नेस्ट ग्लेनर 1983: पृ.1)

राष्ट्रवाद की इस परिभाषा में स्पष्टता और विशिष्टता की योग्यता है। इसमें केवल एक ही समस्या है कि यह राष्ट्र की एक समझ पर आधारित है। अगर राष्ट्रवाद एक राजनीतिक सिद्धांत है जो राज्य (राजनीतिक इकाई) और राष्ट्र (राष्ट्रीय इकाई) की अनुरूपता का प्रतिनिधित्व करता है तब हमें राष्ट्रवाद को समझने के लिहाज से इस परिभाषा के आधार पर हमें उसे परिभाषित करने में सफल होना चाहिए। एक राष्ट्र की परिभाषा कर पाना आसान नहीं है। यह कठिन और विवादास्पद दोनों है। एक राष्ट्र को परिभाषित करने के प्रयास में मुख्य समस्या यह है कि किसी खास दिए गए समय पर बड़ी तादाद में मौजूद राष्ट्र उस परिभाषा पर खरे नहीं उतरते हैं। इस तरह से ऐसा लगता है कि राष्ट्रों की असली दुनिया (अपनी एकता के बावजूद) इतनी विविधतापूर्ण है कि किसी अकेली परिभाषा में इन सबको शामिल करने की आशा नहीं की जा सकती है। इसी की एक वजह है कि विद्वान आम तौर पर राष्ट्रवाद की कोई सार्वभौमिक परिभाषा देने से बचते हैं, जो सभी परिस्थितियों पर लागू हो। वे विशिष्ट राष्ट्रों को व्याख्यायित करना आसान पाते हैं। विशिष्ट अनुभवों के आधार पर कुछ बड़े सिद्धांतों को चुन पाना भी बहुत ज्यादा कठिन है। एर्नेस्ट गेलनर दो गुणों— संस्कृति और इच्छा—को चिन्हित करते हैं जो सामान्य परिभाषा के एक हिस्से का निर्माण कर सकते हैं। लेकिन वो खुद ही इन दोनों की अपर्याप्तता को समझते थे और वास्तव में दोनों सभी तरह के राष्ट्रों की सही पहचान नहीं कर पाते थे। उन्हीं के हवाले से एक बार फिर:

"राष्ट्रवाद का विचार जो हमारे युग में सार्वभौमिक और सामान्य लगता है, वस्तुतः क्या है? दो परिवर्तनशील, अस्थायी परिभाषाओं पर बातचीत इस काल्पनिक अवधारणा को चिन्हित करने में मददगार साबित होगी। 1) दो व्यक्ति एक ही राष्ट्र के हैं, केवल और केवल वो एक संस्कृति की साझेदारी करते हैं जहां संस्कृति का मतलब है विचारों, पहचानों और संगठनों और व्यवहार और संचार के रास्तों की एक व्यवस्था। 2) दो इंसान एक ही राष्ट्र के हैं, केवल और केवल दोनों एक दूसरे को एक ही राष्ट्र से जुड़े होने के तौर पर पहचानते हैं। दूसरे शब्दों में राष्ट्र इंसानों को बनाते हैं। राष्ट्र इंसानों की प्रतिबद्धताओं और समर्पणों और एकजुटताओं की कलाएं हैं। लोगों की केवल एक श्रेणी एक राष्ट्र बन जाती है जब श्रेणी के सदस्य पूरे विश्वास के साथ एक दूसरे के कुछ पारस्परिक अधिकारों और कर्तव्यों का अपनी सदस्यता की हिस्सेदारी के न्याय के तौर पर चिन्हित करते हैं..... इसमें से प्रत्येक अस्थायी परिभाषाएं, सांस्कृतिक और स्वयंसेवी कुछ योग्यता रखती हैं। उनमें से प्रत्येक में एक तत्व ऐसा है जो राष्ट्रवाद को समझने के लिहाज से असली महत्व रखता है। लेकिन कोई भी पर्याप्त नहीं है। सामान्य तौर की बजाय मानव विज्ञान में पहले की परिभाषा से मान्यता प्राप्त संस्कृति की परिभाषाएं कुख्यात तौर पर कठिन और असंतोषजनक हैं। इस समस्या का सबसे बेहतर निदान औपचारिक परिभाषा में जाने का प्रयास किए बगैर सीधे इस शब्द (राष्ट्र) के इस्तेमाल में है।"

### 1.2.2 राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य को परिभाषित करना

ऊपर के हिस्से में परिभाषा संबंधी कठिनाइयों के आने के बाद हम अभी भी स्पष्टता के लिहाज से दोनों शब्दों—राष्ट्र और राष्ट्र-राज्य— के अस्थायी और परिवर्तनशील परिभाषाएं तय कर सकते हैं।

शायद राष्ट्र को परिभाषित करने की दिशा में पहला कदम है इसकी स्वाभाविकता पर सवाल उठाना और उसे खारिज करना। एक राष्ट्र हमें दिया गया कोई एक कुदरती मानव समुदाय

नहीं है। यह एक ऐतिहासिक श्रेणी है या जिसे इतिहास में इतिहास के द्वारा बनाया गया है। ये कुछ निश्चित ऐतिहासिक परिस्थितियों का उत्पाद है।

आधुनिक काल से पहले या फिर 18वीं और 19वीं सदी में राष्ट्रवाद के उभार से पहले राष्ट्रवाद 'षब्द' कई प्रकार से इस्तेमाल किया जाता था। यह विशेष रूप से नस्ल या कबीला के अर्थ में प्रयुक्त होता था। इन शब्दों का अर्थ आज राष्ट्र को दिए गए अर्थ से बिल्कुल भिन्न है, हांलाकि ये सारे शब्द मानवीय समूहों के लिए प्रयुक्त होते हैं।

उन्नीसवीं सदी के आखिरी दशकों में राष्ट्र को परिभाषित करने का एक नया आयाम सामने आया। अर्नेस्ट रेनान ने राष्ट्र की नस्लीय और प्राकृतिक परिभाषाओं को खारिज कर दिया। इनके स्थान पर उन्होंने 'इच्छा, स्मृति और चेतना' पर आधारित राष्ट्र की ऐच्छिक परिभाषा दी। इस परिभाषा में दो प्रमुख तत्व थे:

- 1) यह राष्ट्रों को पहले से मौजूद तथ्य के रूप में नहीं देखती थी, बल्कि इनके ऐतिहासिक निर्माण पर जोर देती थी।
- 2) यह इस धारणा को भी अस्वीकार करती थी कि राष्ट्रों का निर्माण प्राकृतिक सीमाओं जैसे नदी, पहाड़ और समुद्र द्वारा होता है। इनके बजाय राष्ट्रों का निर्माण इच्छा और चेतना द्वारा होता है।

राष्ट्रों को समझने में ये तरीका वास्तव में एक बड़ा मोड़ साबित हुआ। इसने राष्ट्रों को एक आकस्मिक जरूरत के तौर पर देखा जिसे मानव इच्छा के जरिये लाया गया था। इस समझ पर राष्ट्रों के बारे में कोई भी चीज मजबूत और स्थाई नहीं थी। उनका निर्माण भी किया जा सकता था और उनका खात्मा भी। 1882 में राष्ट्र की अवधारणा पर दिए गए अपने मसहूर भाषण में रेनान ने कहा था कि राष्ट्र कोई चिरस्थाई चीज नहीं है। वो शुरू हुए हैं और उनका खात्मा भी होगा। इस बात की पूरी संभावना है कि उन्हें यूरोपीय संघ प्रतिस्थापित करेगा। लेकिन ये उस सदी का कानून नहीं है जिसमें हम रह रहे हैं। मौजूदा समय में राष्ट्रों की मौजूदगी अच्छी है यहां तक कि जरूरी है। उनकी मौजूदगी स्वतंत्रता की गारंटी हैं जो खो जाएगी अगर दुनिया के पास एक ही कानून और एक ही मालिक होता। "

हालांकि इस समझ के साथ एक बड़ी समस्या थी जो इस बात से बिल्कुल अलग थी कि यह यूरोप पर केंद्रित था। श्रेणियों के निर्माण (इच्छा, याद और चेतना) के जरिये यह राष्ट्रों की अच्छे और कारगर तरीके से गिनती करता था जो राष्ट्रों को एक संकेत दे सकता था। लेकिन ये श्रेणियां प्रकृति में इतनी आम थीं कि उन्हें ज्यादातर समुदायों में हासिल किया जा सकता था। इच्छा और चेतना के आधार पर बहुत सारे गैर राष्ट्रीय समुदायों को भी पहचाना जा सकता था। वास्तव में ऐसा कहा जा सकता है कि अगर सारे नहीं तो ज्यादातर मानव समुदायों की इस आधार पर पहचान हो सकती है। इस तरह से सभी प्रकार के मानव समुदायों के एक बहुत बड़े पूल से विशिष्ट और अलग मानव समुदाय की कैसे पहचान की जाएगी? रेनान की परिभाषा ने राष्ट्रों के सामान्य हिस्से को बेहतर तरीके से पकड़ा लेकिन उनके विशिष्ट पक्ष को दरकिनार कर दिया। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो इसके पास समावेषी होने की पूरी योग्यता थी। इसकी खामी यह थी कि यह पर्याप्त तौर पर विशिष्ट नहीं थी।

रेनान की समझ की कुछ कमियों को जोसेफ स्टालिन ने 1913 में रेखांकित किया था। उन्होंने राष्ट्रों के कुछ खास विशिष्टताओं पर जोर दिया। स्टालिन ने राष्ट्रों को कुछ इन शब्दों में परिभाषित किया: राष्ट्र लोगों के एक स्थायी समुदाय की ऐतिहासिक निर्मिति है, जो समान भाषा, क्षेत्र, आर्थिक जीवन एवं मनोवैज्ञानिक बुनावट के आधार पर गठित होता है और

साझी संस्कृति में परिलक्षित होता है। इस परिभाषा ने राष्ट्रों की पहचान के लिहाज से पांच मुख्य विशेषताओं को प्रतिपादित कर दिया: ऐतिहासिक निरंतरता, समान भाषा, समान क्षेत्र, आर्थिक जीवन में समानता और साझी संस्कृति।

स्टालिन की समझ कुछ मामलों में रेनान से बिल्कुल विरोधी थी हांलाकि दोनों राष्ट्रों के निर्माण के मामले में बुनियादी धारणाओं की साझेदारी करते थे कि राष्ट्र एक पहले से मौजूद तथ्य नहीं हैं और उनका एक ऐतिहासिक प्रक्रिया में निर्माण होता है। अगर रेनान राष्ट्रों को सामान्य पक्ष के पैमाने पर देखते हैं तो स्टालिन दूसरे छोर पर पहुंच जाते हैं और राष्ट्रों को विशिष्ट पक्ष से देखने की कोषिष करते हैं। स्टालिन राष्ट्र के विशिष्ट हिस्सों को इतना प्रचारित करते हैं कि वह शायद राष्ट्रों के निर्माण में इच्छा और चेतना के सामान्य योगदान को नजरंदाज कर देते हैं। अगर हम 20वीं सदी में यूरोपीय यहूदियों का उदाहरण लें तो यहूदी राष्ट्र स्टालिन की परिभाषा में पर्याप्त तौर पर समाहित नहीं होता है। लेकिन ये रेनान की परिभाषा में समाहित होता है।

इस बात में कोई शक नहीं है कि स्टालिन की परिभाषा रेनान से आगे थी। लेकिन अगर दोनों की परिभाषा को मिला दिया जाए तो भी दुनिया के सारे संभावित राष्ट्र इसमें समाहित नहीं हो सकते हैं। तो फिर वह कौन-सा अहम तत्व है जो यहां नदारद है? यहीं एर्नेस्ट गेलनर धीरे से प्रवेश कर जाते हैं। उन्होंने 1983 में अपनी किताब राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद में इस छूटे हुए का जिक्र किया। उन्होंने महत्वपूर्ण और कुछ विवादित विचार को आगे किया जिसमें कहा गया था कि आखिर में राष्ट्रों का निर्माण राष्ट्रवाद से होता है किसी दूसरे तरीके से नहीं। यह ऐसा मामला नहीं है कि पहले बने राष्ट्र अपने औचित्य का निर्माण राष्ट्रवाद के विचारों के जरिये करते हैं। अगर हम इस समझ को भारतीय मामले में लागू करें तो हम इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि यह भारतीय राष्ट्र नहीं था जिसने भारतीय राष्ट्रवाद का निर्माण किया बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद की विचारधारा के जरिये भारतीय राष्ट्र अपने आप निर्मित हो गया जिसमें निष्चय ही अन्य कारक भी शामिल हैं।

इस नदारद तत्व के जुड़ने से हमारे राष्ट्र की परिभाषा पूरी हो सकती है। अगर हम इन तीनों तत्वों यानी *आत्मपरक* (सबजेक्टिव), *वस्तुनिष्ठ* एवं *वैचारिक* को एक साथ रख दें तो हम भरोसे के साथ कह सकते हैं कि ये तीनों तत्व मिलकर राष्ट्र की एक ऐसी परिभाषा दे सकते हैं जिसके दायरे में राष्ट्र के रूप में सोची जा सकनेवाली सारी संभावनाएं समाहित हो सकती हैं। राष्ट्र की यह अवधारणा ऐसी समावेधी होगी जो सभी राष्ट्रों को अपने दायरे में ला सकेगी और उतनी ही विशिष्ट भी होगी जो दूसरे गैर राष्ट्रीय समुदायों से राष्ट्र की भिन्नता की पहचान भी सुनिश्चित कर सकेगी।

इस परिभाषा की विशेषता यह है कि कोई भी वास्तविक या संभावित राष्ट्र इसकी परिधि से बाहर नहीं है। फिर भी, यह उन समूहों को छोड़ देता है जो राष्ट्र नहीं हैं। लेकिन यह ध्यान रखने योग्य है कि इस परिभाषा की सारी विशिष्टताएं प्रत्येक स्थिति में लागू नहीं होती हैं। उदाहरण के तौर पर, भारतीय राष्ट्रवाद एक सामान्य भाषा पर आधारित नहीं था। यहूदी या पोलिष राष्ट्रवाद एक सामान्य क्षेत्र या एक सामान्य आर्थिक जीवन पर आधारित नहीं था। पूर्वी यूरोप के कुछ अन्य राष्ट्रियताएं (जैसे अल्बानिया) किसी लम्बी ऐतिहासिक निरंतरता पर आधारित नहीं थीं। अतः सारे राष्ट्र इस परिभाषा के सारे तत्वों को समाहित नहीं करते हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि सारे वास्तविक या संभावित राष्ट्र इस परिभाषा के कुछ तत्वों पर आधारित हैं।

यदि इस प्रकार की विस्तृत और समावेधी राष्ट्र की परिभाषा हमें उपलब्ध है (जिसके लिए हम रेनान, स्टालिन और गेलनर के आभारी हैं), तो हमारे लिए राष्ट्रवाद और राष्ट्र-राज्य

को समझना आसान हो जाता है। जैसा कि इस इकाई में पहले बताया जा चुका है, राष्ट्रवाद राष्ट्र और राज्य की एकता पर जोर देता है और इस बात को महत्व देता है कि राज्य जनता के प्रतिनिधि के तौर पर काम करे। एक राष्ट्र-राज्य वास्तव में इस तरह का राज्य होता है। हालांकि मानव इतिहास में विभिन्न प्रकार के राज्य मौजूद रहे हैं लेकिन किसी भी पहले के राज्य ने राष्ट्रवाद की इन शर्तों को पूरा नहीं किया। यह सिर्फ आधुनिक समय और परिस्थितियों में ऐसा हुआ कि एक नए तरह का राज्य-राष्ट्र-राज्य-विकसित हुआ जिसमें राज्य और समाज एक दूसरे से अभिन्न जुड़े हुए थे। राष्ट्र बृहद आधुनिक समुदाय हैं जो अपना प्रतिनिधि राज्य चाहते हैं। वस्तुतः राष्ट्रवाद इसके लिए जमीन तैयार करता है।

राष्ट्र और राष्ट्रवाद के बारे में कुछ समझने के बाद अब समय आ गया है कि हम राष्ट्रवाद के सिद्धांतों पर चर्चा करें जिनमें इस परिघटना की व्याख्या करने का प्रयास किया गया है।

### 1.3 राष्ट्रवाद के सिद्धांत के सामने चुनौतियां

यह बात बेहद महत्वपूर्ण है कि नये राष्ट्रीय समुदायों का उदय दुनिया में एक दूसरी भीमकाय अवधारणा के साथ हुआ— दुनिया का कृषि से एक औद्योगिक समाज में परिवर्तन और एक नये किस्म के सामाजिक ढांचे का निर्माण जिसे औद्योगिक समाज का नाम दिया गया। यह महज एक इत्तफाक था या फिर दोनों बदलाव (छोटे स्थानीय समुदायों से बड़े राष्ट्रीय समुदायों और कृषि समाजों से एक औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था की ओर) एक दूसरे से कारण और प्रभाव के रिश्ते के साथ जुड़े हुए हैं? बहुत सारे विद्वान सोचते थे कि दोनों एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। एर्नेस्ट गेलनर ने एक साफ और उच्च कोटि का सिद्धांत दिया कि कैसे इस बदलाव से राष्ट्रवाद का उदय जुड़ा हुआ था और गहराई से इसी में अंतर्निहित था। बहुत दूसरे लोग इस बिंदु पर उनसे सहमत थे। बड़ी तादाद में विद्वानों ने राष्ट्रवाद को एक आधुनिक प्रक्रिया के रूप में देखा और कुछ ने इसे उद्योगवाद से जोड़कर देखा। इस विचार के मुताबिक उद्योगवाद में कुछ था जिसने राष्ट्रों का निर्माण किया। औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में राष्ट्र का निर्माण अंतर्निहित था। औद्योगिक समाज की कुछ विशेषताएं इस तरह की थीं कि विभिन्न मानव समुदायों का कच्चा माल साफ सुथरा, मानकों पर खरा, बिल्कुल घर में तैयार, बड़े राष्ट्रीय समुदायों के बने बनाये उत्पादों में तब्दील हो गया। निष्चित तौर पर दुनिया के महान राष्ट्रवादी अनुभव को एक ऐसे सिद्धांत की जरूरत थी जो इतना बड़ा होना चाहिए कि वह उन अनुभवों को समेट सके। उद्योगवाद का सिद्धांत कुछ सवालियों के जवाब जरूर देता है लेकिन कुछ अभी भी अनुत्तरित हैं।

राष्ट्रवाद को उद्योगवाद से जोड़ने के सिद्धांत में एक खास समस्या है। यह बात बिल्कुल साफ है कि उद्योगवाद के तौर पर विकास केवल यूरोपीय देशों के कुछ पाकेटों तक सीमित था। तुलनात्मक रूप से राष्ट्रवाद दुनिया के बड़े हिस्सों में फैला था। उद्योगवाद और राष्ट्रवाद का दौर तकरीबन एक साथ शुरू (18वीं सदी के अंत से 19वीं सदी के बीच) हो सकता है लेकिन उसके बाद उनका फैलाव एक दूसरे से अलग हो गया। उनका विस्तार उनके द्वारा की गई अपेक्षाओं के बिल्कुल विपरीत रहा। उद्योगवाद के बारे में सामान्य अपेक्षा यह थी कि धीरे-धीरे औद्योगिक प्रभाव में विस्तार होगा और दुनिया के दूसरे हिस्सों में फैल जाएगा। तुलना के हिसाब से राष्ट्रवाद को एक यूरोपीय अवधारणा के तौर पर देखा जाता था न कि वैश्विक। लेकिन दोनों भविष्यवाणियां सफल नहीं रहीं। उद्योगवाद एक समान और एक तरीके से पूरी दुनिया में नहीं फैल पाया। बजाय इसके इसने एक यूरोपीय केंद्र का निर्माण कर दिया। और उसके साथ ही एक हाषिया भी बन गया जिसमें एषिया और अफ्रीका के देश शामिल थे। इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को केंद्र की सेवा के लिए लगा दिया गया। केंद्र और हाषिये के बीच लेन-देन साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के नये यंत्रों के द्वारा संचालित किया जाने लगा।

तुलनात्मक तौर पर राष्ट्रवाद बाकी पूरी दुनिया में फैला और सही मायने में एक वैश्विक अवधारणा के तौर पर विकसित हुआ। इसमें कुछ भी खास तौर पर यूरोपीय नहीं था। इसने अपने प्रभाव को उन इलाकों और समुदायों पर भी डाला जो औद्योगीकरण से बहुत ज्यादा दूर थे। यही चीज राष्ट्रवाद के सिद्धांत के लिए एक असली चुनौती थी जिसे औद्योगीकरण के विस्तार के साथ जोड़ा गया था साथ ही औद्योगीकृत समाज तक सीमित रखा गया था। इसे एक नये तरीके और एक भिन्न किस्म की व्याख्या की आवश्यकता थी।

इस बात को लेकर बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए कि राष्ट्रवाद के तौर पर फैली अवधारणा इतने आसान तरीके से एकाएक नहीं आयी होगी। अगर दुनिया का एक बड़ा हिस्सा इसी तरह के अनुभवों से गुजरा और एक हद तक एक ही समय में तो ऐसे में उसके पीछे एक गंभीर कारण होगा। इसी तरह से राष्ट्रवाद की पैदाइश के लिए व्यापक स्तर पर इसी तरह की परिस्थितियां रही होंगी। उदाहरण के लिए 19वीं सदी के इंग्लैंड और 20वीं सदी के भारत में क्या समानता थी? एक बेहद आगे बढ़ा हुआ औद्योगिक देश और एक साम्राज्यवादी महाशक्ति थी जबकि दूसरा आर्थिक तौर पर एक बहुत पिछड़ा और साम्राज्यवादी वर्चस्व का शिकार था। ऐसी क्या साझी परिस्थितियां थीं जो दोनों समाजों में राष्ट्रवाद के उदय का कारण बनीं?

इस प्रकार की दुविधाओं के कारण राष्ट्रवाद का कोई एक सिद्धांत नहीं है बल्कि बहुत सारे हैं। लेकिन यह इतना भी नहीं है कि हम विभिन्न तरह के राष्ट्रवाद की बात करें। लेकिन राष्ट्रवाद के उभार के लिए हमारे पास अलग-अलग व्याख्याएं हैं। इसलिए ये व्याख्याएं ही सबको अलग-अलग करती हैं जैसा कि बेनेडिक्ट एंडरसन ने लिखा है " किसी एक राजनीतिक अवधारणा के बारे में सोचना मुश्किल है जो इतनी जटिल हो और जिसके बारे में बहुत कम विश्लेषणात्मक सहमति हो। कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जो बड़े पैमाने पर स्वीकार्य हो। कोई भी इसके आधुनिक या फिर पुरातन पक्ष को (राष्ट्रवाद पर लिखे गए किसी भी संग्रह में ) निर्णायक तौर पर पेश नहीं कर सका है और इस मसले पर एक दूसरे के विरोधी लेखक कहीं भी मिल जाएंगे जो विभिन्न और अस्पष्ट क्षितिज की तरफ घूमने लगेंगे बनिस्बत आमने-सामने जिरह करने के।" (बेनेडिक्ट एंडरसन, 'इंट्रोडक्शन' इन गोपाल बालकृष्णन. **मैपिंग द नेशन**)। उन्होंने यह भी कहा था कि राष्ट्रवाद की राजनीतिक ताकत उसकी दार्शनिक गरीबी से मेल खाती है। इसके साथ ही यह बात अंतर्निहित है कि आधुनिक दुनिया में राष्ट्रवाद द्वारा हासिल राजनीतिक शक्ति को हर कोई मान्यता देता है लेकिन इस बात पर बहुत कम सहमति है कि यह किसके लिए लाया गया। इसलिए आइये अब राष्ट्रवाद के उन अलग-अलग रास्तों की ओर चलते हैं जिसके बारे में समाज वैज्ञानिक अपनी समझ रखने के साथ उन्हें व्याख्यायित करते हैं।

## 1.4 राष्ट्रवाद के सिद्धांत

राष्ट्रवाद के विभिन्न सिद्धांतों पर प्रकाश डालने से पहले एक या दो सामान्य बिन्दुओं को सामने लाना जरूरी है। राष्ट्रवाद के सभी सिद्धांतकार इस बात से सहमत होंगे कि एक अवधारणा जो इतनी व्यापक है कि उसे किसी विशिष्ट या आंतरिक कारकों या समाज के भीतर सक्रिय कारकों से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता है। इसे संतोषजनक तरीके से बाहरी या फिर बहिर्जात कारकों या किसी खास समाज के बाहरी कारकों के जरिये ही व्याख्यायित किया जा सकता है। राष्ट्रवाद के अगुवा विद्वान टॉम नैर्न कहते हैं कि " हालांकि यह बात सही नहीं है कि किसी भी प्रकार का राष्ट्रवाद सही में इन्ही आंतरिक गतियों का उत्पाद है..... वेल्थ नेशनल-इज्म (नेशन पर जोर) वास्तव में वेल्थ के लोगों, उनके इतिहास, उत्पीड़न के उनके खास तरीके और इससे बची सारी चीजों की विशिष्टता के साथ होगा।

लेकिन वेल्थ नेषनल-इज्म (इज्म पर जोर)- इसमें आया सामान्य, सार्वभौमिक जरूरत वाला इस शब्द में हम लोगों को बहुत रुचि है- इसका वेल्थ से कुछ नहीं लेना-देना। ये वेल्थ की कोई सच्चाई नहीं है बल्कि सामान्य इतिहास के विकास का सत्य है। किसी खास समय पर वेल्थ की भूमि और उसके लोग ऐतिहासिक प्रक्रिया में इस तरह से रहने के लिए मजबूर किए गए। (टॉम नैर्न, *द ब्रेक अप आफ ब्रिटेन: क्राइसिस एंड नियो नेषनलिज्म*)।

राष्ट्रवाद के सिद्धांतकारों में मुख्य मतभेद इन बाहरी कारकों की पहचान को लेकर है। कुछ लोग राष्ट्रवाद को मानव समाज के विकास के आवश्यक चरण के तौर पर देखते हैं जिससे समाज का पहले या फिर बाद में गुजरना जरूरी है। जबकि दूसरे इसे ज्यादा सामान्य तरीके से देख सकते हैं जिसमें राष्ट्रवाद एक मानव भावना या पहचान के लिए एक बड़ी सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जरूरत या एक बड़ी पूर्णता के साथ पहचाने जाने की इच्छा है। लेकिन सब इस बात से सहमत होंगे कि राष्ट्रवाद की अवधारणा एक व्यापक, देश के पार, सामान्य व्याख्या रखती है। अगर राष्ट्रवाद को किसी साझे लक्षणों, विभिन्न समाजों के अनुभवों - आमतौर पर एक ही समय (18वीं-20वीं सदी) - के आधार पर पहचाना जाए तब इसकी कुछ सामान्य व्याख्या जरूर होनी चाहिए।

हालांकि सिद्धांतकारों में समानताएं यहीं खत्म हो जाती हैं। सिद्धांतकार एक सिद्धांत की जरूरत की बात से सहमत हो सकते हैं लेकिन सिद्धांतों के विषय से कत्तई नहीं। वो राष्ट्रवाद के लिए विविध तरह की व्याख्याएं सामने ले आते हैं। इन मतभेदों को द्विचारों के जरिये समझा जा सकता है। ये दोहरे विचार राष्ट्रवाद को एक दुर्घटना से लेकर एक महान मानवीय जरूरत के दायरे तक ले जाते हैं। यह या तो जरूरत या आकस्मिक, विचारों का उत्पाद या भौतिकवादी, या तो झूठी चेतना या महान मानवीय आकांक्षा या कुछ खास सामाजिक समूहों या ढांचों द्वारा लाया गया। लेकिन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण द्विचार आधुनिकतावादी और गैर आधुनिकतावादी है। आइये इस द्विचार पर कुछ विस्तार से चर्चा करते हैं।

### 1.4.1 गैर आधुनिकतावादी सिद्धांत

जहां तक राष्ट्रवाद के सिद्धांत का संबंध है, संभवतः आधुनिकतावादी तथा गैर आधुनिकतावादी सबसे बड़ी विभाजक रेखा है। आधुनिकतावादी राष्ट्रवाद को एक आधुनिक परिघटना तथा पिछली तीन सदी से भी कम अवधि के घटनाक्रम के रूप में देखते हैं। इस विभाजक रेखा की दूसरी तरफ गैर आधुनिकतावादी हैं, जो राष्ट्रवाद को समझने के लिए इस आधुनिक दौर की विशेष स्थिति को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं दिखते हैं तथा वो मानते हैं कि इसे समझने के लिए इससे भी ज्यादा समय की दरकार है। उनका तर्क है कि यह एक ऐसा घटनाक्रम है जिसकी जड़ें बेहद गहरी हैं। राष्ट्रवाद के रूप में जो घटनाक्रम मानवीय जीवन में बड़ी ही जटिलता के साथ गुंफित है, उसका सृजन इतने कम समयांतराल में नहीं हो सकता है, निष्चित रूप से इसका विकास एक लंबे कालक्रम में ही संभव है।

इस चरण में यह आवश्यक है कि आधुनिकतावादी तथा गैर आधुनिकतावादी दोनों ही व्याख्याओं को उभारा जाए, जो आंतरिक रूप से एक दूसरे से पूरी तरह अलग हैं। आधुनिकतावादी होने के अलावे सभी आधुनिकतावादियों के बीच किसी और तरह की सहमति नहीं है। इसी तरह गैर आधुनिकतावादियों के बीच भी कमोबेश यही स्थिति है। उन्हें आसानी से विकासवादियों, प्रकृतिवादियों तथा निरन्तरतावादियों में विभाजित किया जा सकता है। प्रकृतिवादी राष्ट्र को कुछ कुछ प्राकृतिक जैसा देखते हैं, जिसे मानव मस्तिष्क सहज ही स्वीकारता है। राष्ट्रवाद को वो बेहद प्राकृतिक भावना के रूप में देखते हैं। इस



समझ के आधार पर, लोगों के लिए राष्ट्रवादी होना किसी हद तक स्वाभाविक है। चूंकि वो इसे प्राकृतिक मानते हैं, इसलिए उन्हें किसी भी तरह की अन्य व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं है। उदाहरण के लिए एक बड़े विद्वान के इस उद्धरण को उद्धृत किया जा सकता है कि राष्ट्रवाद "एक मानसिक दषा" है। प्रकृतिवादी राष्ट्रवाद के उत्थान या विकास या उभार जैसे शब्द का इस्तेमाल नहीं करते हैं। वो हमेशा लोगों के दिल-ओ-दिमाग में राष्ट्रवाद की असीम तथा स्थायी भावना की चर्चा करते हैं। इसलिए राष्ट्रवाद की व्याख्या की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस राष्ट्रवादी दृष्टिकोण पर राष्ट्रवाद नहीं बल्कि इसकी गैरमौजूदगी है, जिसकी व्याख्या की जानी है।

इन प्रकृतिवादियों के आस-पास ही निरन्तरता की स्थिति भी है। राष्ट्रवादियों में यह दृष्टिकोण अक्सर ही पाया जाता है। राष्ट्रवाद के विचारक तथा उसे मानने वाले हमेशा अपने इतिहास में पूर्ण निर्मित रूप में राष्ट्रवाद के अपने ब्रांड को बनते देखना चाहते हैं। उदाहरणार्थ, पाकिस्तानी राष्ट्रवाद के विचारक तथा प्रचारक मोहम्मद अली जिन्ना 1940 के बाद अक्सर यह कहते हुए पाये गए कि मुस्लिम राष्ट्रवाद किसी हाल फिलहाल का राजनीतिक विकास नहीं है, बल्कि मुस्लिम राष्ट्र का अस्तित्व मध्यकाल से ही रहा है। जब जिन्ना से उनके मुस्लिम राष्ट्र के सही स्थान तथा उसके अस्तित्व में आने को लेकर सवाल पूछा गया तो उन्होंने एक दिलचस्प उत्तर दिया, 'पाकिस्तान पहले से ही लंबे समय से अस्तित्व में था, ऐसा नहीं कि पाकिस्तान किसी हालिया दौर की धारणा है'। उन्होंने अपने भाषण में इसे और ज्यादा स्पष्ट करते हुए कहा, 'पाकिस्तान हिन्दुओं के आचरण या दुराचरण का नतीजा नहीं था। यह हमेशा से ही मौजूद था। सिर्फ मुसलमान ही इसे लेकर सचेत नहीं था। पाकिस्तान तो उसी क्षण अपने अस्तित्व में आ गया, जब मुस्लिम शासन स्थापित होने के बहुत पहले गैर मुसलमान का धर्मांतरण हुआ... इस पूरे दौर में हिन्दू हिन्दू ही रहा और मुसलमान मुसलमान ही रहा, उन्होंने अपना वजूद बनाये रखा—यही पाकिस्तान का आधार था' (अलीगढ़ में जिन्ना का भाषण, मार्च 1944, खुर्शीद अहमद खान युसूफी (संपादित), स्पीचेज, स्टेटमेंट्स एण्ड मेसेज ऑफ कायद-ए-आजम, वोल्यूम 3, पृष्ठ संख्या 1840-41)। यह एक 'आविष्कृत परंपरा' के रूप में राष्ट्रवाद का एक शास्त्रीय उदाहरण था।

इस अवस्था में, इस अंतर को सामने लाना बेहद जरूरी हो जाता है कि आखिर राष्ट्रवादी स्थिति क्या थी और राष्ट्रवाद पर क्या स्थिति थी। सभी देशों के पास एक 'अपनी छवि' होती है, जिसे राष्ट्रवादी विचारक या नेता गढ़ते हैं। इस पहचान को हमारे लिए समझना बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमें उस राष्ट्र विशेष के बारे में कई मालूमात हसिल होते हैं। लेकिन ठीक इतना ही महत्वपूर्ण हमारे लिए यह है कि इसे हम आवश्यक रूप से वैध करार नहीं दें। अन्य शब्दों में, राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद को वास्तविक एवं शक्तिषाली सामाजिक घटनाक्रम के रूप में समझा जाना चाहिए, राष्ट्रवादियों द्वारा अपने बारे में कही जाने वाली कहानियों से वास्तविकता बिल्कुल अलग होती है। राष्ट्रवाद पर किये गए विद्वतापूर्ण शोध में, निरन्तरतावादियों की स्थिति को समझा गया है तथा उसे 'आविष्कृत परंपरा' के रूप में व्याख्यायित किया गया है। 'आविष्कृत परंपरा' क्या है? 'आविष्कृत परंपरा' का विचार निम्नलिखित अर्थ देता है:

- 1) राष्ट्रवादी अतीत तथा परंपरा का इस्तेमाल तथा उससे प्रेरणा हासिल करते हैं ताकि वो अपने राष्ट्रवादी परियोजनाओं को वैधता दे सकें।
- 2) वो अपने राष्ट्र के लिए अतीत, इतिहास तथा परंपरा में भी इसकी उपस्थिति या अतीत से इसकी निरंतरता का दावा करते हुए इसकी वैधता का दावा करते हैं।
- 3) इस तरह के दिखावे में परंपरा को उस तरह नहीं दिखाया जाता है, जैसी वो थी, बल्कि परंपरा की यह शक्ल या तो अविष्कृत होती है या कृत्रिम होती है। परंपरा का

आविष्कार कुछ इस तरह किया जाता है कि उसका इस्तेमाल राष्ट्रवादियों के समर्थन में किया जा सके। जिन्ना मुस्लिम राष्ट्र को न्यायोचित सिर्फ इस आधार पर ठहरा सके कि हिन्दू और मुसलमान के बीच किसी तरह का कोई संबंध ही नहीं था तथा यही कारण था कि भारतीय इतिहास में मुस्लिम राष्ट्र का अस्तित्व लंबे समय से रहा है। इस तरह परंपरा तथा अतीत का उपयोग एक पूर्ण आधुनिक 'मुस्लिम राष्ट्र' की वैधता के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा। परंपरा की व्याख्या उस तरह नहीं की जा रही थी, जिस तरह वो थी, उसकी व्याख्या कुछ उस तरह की जा रही थी कि जिसका इस्तेमाल इस 'मुस्लिम राष्ट्र' को वैधता दिलाने में सहायक हो। इस उद्देश्य के लिए परंपरा की 'खोज' की जा रही थी। 'अविष्कृत परंपरा' की अवधारणा प्रमुख इतिहासकार एरिक हॉब्सबाम द्वारा रखी गई तथा राष्ट्रों तथा राष्ट्रवाद की प्रकृति को समझने के लिए यह अवधारणा एक महत्वपूर्ण संकल्पना रही है। अभी तक अन्य महत्वपूर्ण गैर आधुनिकतावादी स्थिति विकासवादियों की है। यह आधुनिक काल में राष्ट्रवाद की व्यापक उपस्थिति को स्वीकार करता है, लेकिन इसका तर्क है कि इसकी व्याख्या मानव इतिहास के पूर्व आधुनिक काल से गुजरते हुए की जा सकती है। यह तर्क पूर्व उपस्थित संस्कृतियों, विरासतों तथा विभिन्न अन्य नैतिक संधियों, भावनाओं एवं सामूहिक स्मृतियों पर केन्द्रित है, जो 'पीढ़ी-दर-पीढ़ी' एक दूसरे के साथ बढ़ती है तथा इस तरह इसका योगदान आधुनिक काल में राष्ट्र के उभार में होता है। उदाहरण के लिए आधुनिक यूनानी राष्ट्रवाद की रूपरेखा तथा उसकी प्रकृति को बिजैन्टाइन के उपनिवेशवाद तथा शास्त्रीय परंपरा जैसे दोनों काल को केन्द्रित करते हुए व्याख्या की जा सकती है। इस दृष्टिकोण के सबसे बड़े व्याख्याकारों में एंथोनी डी. स्मिथ हैं। यह दृष्टिकोण किसी व्यापक तथा सामान्य संरचना की तरफ नहीं देखता, बल्कि प्रत्येक समाज की खास विशेषता पर ध्यान देता है। इसे इस बात से बहुत लेना देना नहीं है कि सभी देशों में सामान्य क्या है, बल्कि इस बात पर ज्यादा ध्यान है कि प्रत्येक राष्ट्र एक दूसरे से किस बात में भिन्न है।

#### 1.4.2 आधुनिकतावादी सिद्धांत

राष्ट्रवाद को समझने को लेकर गैर आधुनिकतावादी दृष्टिकोण के विरोध में आधुनिकतावादी दृष्टिकोण हैं। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि सभी आधुनिकतावादी एक दूसरे से सहमत नहीं हैं तथा आधुनिकतावादी भी एक दूसरे से उतने ही भिन्न हैं, जितना कि गैर आधुनिकतावादी। शुरुआती आधुनिकतावादी तर्कों में से एक को स्थापित करने वालों में एली कड्युरी थे। उन्होंने अपने तर्कों की स्थापना 1961 में की थी। एली कड्युरी ने राष्ट्रवाद को एक सिद्धांत के रूप में देखा तथा उन्होंने इसे आधुनिक यूरोप के बौद्धिक इतिहास में गहरे रूप में महसूस भी किया। इस किताब का पहला वाक्य स्वयं स्पष्ट करता है: 'राष्ट्रवाद का सिद्धांत 19वीं सदी के शुरुआत में यूरोप में आविष्कृत किया गया था।' (एली कड्युरी, राष्ट्रवाद, पृष्ठ संख्या 1) यह राष्ट्रवाद की एक असंरचनात्मक व्याख्या थी, जिसके मुताबिक राष्ट्रवाद की जड़ें गहरी हैं, न कि इसकी कोई ठोस संरचनाएं हैं और न ही विशेष शर्तें हैं, लेकिन ऐसा सिर्फ यूरोपियन विचारकों के विचारों तथा सिद्धांतों में था। कड्युरी के सिद्धांत के मुकाबले एक प्रभावशाली विकल्प गेलनर द्वारा दिया गया, जिसके माध्यम से संरचनात्मक व्याख्या संभव थी।

गेलनर ने राष्ट्रवाद के उद्भव को कृषि से औद्योगिक संसार में रूपांतरण के एकीकृत हिस्से के रूप में देखा। इस लिहाज से उनका इतिहास संरचनात्मक तथा भौतिकतावादी दोनों है। यह संरचनात्मक इस लिहाज से है कि उसे उन्होंने किसी व्यक्तिविशेष तथा किसी खास समूहों की गतिविधियों के परिणाम के रूप में नहीं देखते, बल्कि उन्होंने इसे शक्ति तथा

संस्कृति की नयी अंतःक्रिया को सृजित करने वाले नये आर्थिक तथा उत्पादक बलों के सामने आने के रूप में देखा। उनका सिद्धांत उस दृष्टिकोण से भौतिकतावादी था, क्योंकि राष्ट्रवाद के उभार में आधारभूत प्रेरणा के रूप में इसमें विचार तथा सिद्धांत नहीं दिखता है। यह राष्ट्रवाद को नये आर्थिक बलों के संचालन के उत्पाद के रूप में देखता है। राष्ट्रवाद के गेलनर सिद्धांत का सार संक्षेप कुछ इस तरह है:

यह स्पष्ट नहीं कि किस कारण से एक नई, विशेष तथा अभूतपूर्व तरह की अर्थव्यवस्था उभरी तथा 18वीं सदी के अंत एवं 19वीं सदी की शुरुआत के आस-पास यूरोप के अटलांटिक तट पर यह अर्थव्यवस्था स्थापित हुई। यह नई अर्थव्यवस्था आम तौर पर औद्योगिक अर्थव्यवस्था कहलायी, इसमें पहले की अर्थव्यवस्था के मुकाबले कुछ अद्भुत विशेषताएं थीं। एक तो यह अनवरत विकास पर आधारित थी। वास्तव में, यह अर्थव्यवस्था तभी कायम रह सकती थी, जब यह विकसित होती रहे। इस विकसित होती अर्थव्यवस्था ने पुरानी व्यवस्था के स्थायित्व को पूरी तरह खत्म कर दिया। दूसरा कि यह लगातार चलती रहे, इसके लिए जरूरी थी संपूर्ण या स्पष्ट साक्षरता। इस साक्षरता को एक समतामूलक प्रकार का होना था ताकि बड़ी संख्या में अज्ञात तथा एक दूसरे से अपरिचित लोग परस्पर संवाद कर सकें। तीसरा कि इसमें एक उल्लेखनीय गतिशीलता भी थी, व्यावसायिक तथा स्थानीय दोनों तरह की गतिशीलता थी। बड़ी संख्या में लोग अपने पारंपरिक कारोबार, निवास स्थान तथा संस्कृतियों से बेदखल कर दिये गए। इस नई अर्थव्यवस्था के कार्यकलाप के परिणामस्वरूप वे अपने संगठित समुदाय से अलग-थलग कर दिये गए तथा एक ऐसी स्थिति में डाल दिये गए, जो न उनके लिए परिचित थी और न ही उससे उनका कोई लगाव था। चौथा कि नई अर्थव्यवस्था समतावाद पर आधारित थी। यह नई अर्थव्यवस्था एक ऐसे तूफान की तरह आयी, जिसकी विषाल लहरों से प्रतिष्ठा तथा हैसियत पर आधारित पदानुक्रम भी तहस नहस हो गया। इसने पुरानी संस्कृति, पुरानी संरचनाओं, पुराने पदानुक्रम को नष्ट कर दिया तथा पुराने समुदाय को भी अलग-थलग कर दिया। इस नयी व्यवस्था की गतिशीलता तथा उसके अपरिचित होने के अहसास ने समतावाद के लिए हालात पैदा कर दिये। पांचवां कि पुरातनता और संभ्रांतों की उच्च संस्कृति का संरक्षण नई अर्थव्यवस्था के लिए पूर्णतः तर्कसंगत नहीं रह गयी थी। नई स्थिति के अंतर्गत, संभ्रान्तों की उच्च संस्कृति अब सिर्फ मुठ्ठीभर लोगों की कैद में नहीं रह सकी। इसमें अन्यों ने भी भागीदारी की तथा उसे और व्यापक होना था। परिणामस्वरूप, बहुस्थानीय लोक संस्कृति तथा विशेष उच्च संस्कृति दोनों के लिए बने रहना मुश्किल हो गया एवं दोनों का रूपांतरण एक व्यापक तथा सहभागिता वाली उच्च संस्कृति में हो गया।

नई अर्थव्यवस्था को आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का साथ मिला तथा यह इतनी शक्तिशाली थी कि पुरानी व्यवस्था पूरी तरह खत्म हो गई और समय के साथ इसकी जगह एक नई सामाजिक व्यवस्था ने ले ली। यूरोपीय समाज (जो क्रम तथा हैसियत पर आधारित था) में प्रारंभिक विभेद खत्म हो गए तथा उनकी जगह संस्कृति पर आधारित एक नई सीमा रेखा बन गई। नई संस्कृति (प्रारंभिक व्यापक उच्च संस्कृतियों तथा स्थानीय लोक संस्कृति पर आधारित) इन समाजों में विकसित हुई तथा ज्यादातर सदस्य, प्रारंभिक संस्कृति के प्रवाह से वंचित किये गए लोग थे, जिन्हें नई संस्कृति में शामिल किया गया। ठीक इसी तरह, राज्य की भूमिका भी बेहद महत्वपूर्ण हो गई। नया आर्थिक संसार इतना विषाल हो गया कि इससे सिर्फ राज्य होकर ही प्रभावशाली तरीके से निपटा जा सकता था। राज्य इसे सिर्फ इस कारण बनाये रख सका, क्योंकि इसे लोगों का समर्थन हासिल था। इस प्रभावशाली राज्य-समाज भागीदारी को तभी तक बनाये रखा जा सकता था, जबतक कि इसके सदस्य समान संस्कृति वाले हों। इसलिए यह आवश्यक था कि राज्य समाज का प्रतिनिधित्व करे। यह सभी एक नई तरह की व्यवस्था के लिए था :

- सामान्य लोग, जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से बिछड़ गए थे, अब वो नई उच्च संस्कृति के सदस्य के रूप में सम्मान के साथ जीवन यापन कर सकते थे। नई उच्च संस्कृति के संरक्षण और उसके प्रोत्साहन की जिम्मेदारी सिर्फ राज्य की थी। लेकिन यह तभी संभव था, जब लोग और राज्य दोनों की संस्कृति एक हो। नतीजतन, राज्य लोगों के प्रतिनिधि के रूप में आवश्यक था तथा दोनों एक ही सांस्कृतिक समूह से होने थे।
- यह नई अर्थव्यवस्था इतनी विषाल थी कि बिना एक विषाल संख्या में लोगों की हिस्सेदारी से यह प्रभावशाली तरीके से चल ही नहीं सकती थी। लेकिन लोगों को अपनी नई भूमिका तथा उनके नये काम में फिट होने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना जरूरी था। इसलिए शिक्षा बेहद आवश्यक हो गई। इस शिक्षा को विभिन्न वर्गों के बीच समान रूप पहुंचाया जाना था तथा स्वाभाविक था कि इसे प्रभावशाली रूप से अंजाम देने के लिए राज्य की भूमिका अनिवार्य थी। इसलिए राज्य बहुत महत्वपूर्ण हो गया। सामान्य शिक्षा देने की प्रक्रिया में राज्य ने समतामूलक कारकों का इस्तेमाल किया, जिससे सामान्य संस्कृति से बंधे सांस्कृतिक समुदाय (या समुदायों) के सृजन में सहायता मिली।
- राज्य इस जिम्मेदारी को आगे नहीं बढ़ा सकता था, जबतक कि लोगों का साथ और समर्थन नहीं मिले। यह आवश्यक था कि लोग राज्य से जुड़ें तथा राज्य तथा लोगों के जुड़ाव के बीच संबंधों तथा समुदायों पर आधारित किसी भी तरह का मध्यस्थ नहीं हो। दूसरे शब्दों में, लोगों को नागरिक होना चाहिए तथा प्रत्यक्ष रूप से राज्य के प्रति जिम्मेदार होना चाहिए। इन सभी प्रक्रियाओं के संचालन में, राष्ट्रवाद अनिवार्य तथा वांछित परिणाम के रूप में सामने आया। आधुनिक अर्थव्यवस्था के लिए यह जरूरी है; आधुनिक राज्य के लिए यह जरूरी है; इस समाज के लिए यह आवश्यक है। यही राष्ट्रवाद की गेलनर की व्याख्या का सार है।

गेलनर ने राष्ट्रवाद को लेकर एक विष्वसनीय सिद्धांत उपलब्ध कराया। लेकिन इस सिद्धांत के साथ सबसे बड़ी समस्या है कि इस सिद्धांत का जुड़ाव भारत या सही मायने में अन्य उपनिवेशों के विकास के मामलों के साथ नहीं हो पाया। गेलनर के सिद्धांत की सबसे बड़ी ताकत घटनाक्रम की वैश्विक प्रकृति पर उसकी बहुत अच्छी पकड़ है। हालांकि यह सिद्धांत एशिया तथा अफ्रीका के औपनिवेशिक समाज के राष्ट्रवादी अनुभवों को पर्याप्त रूप से व्याख्या करता प्रतीत नहीं होता है। लेकिन सही मायने में कहा जा सकता है कि यह सिद्धांत पूरी तरह पश्चिमी यूरोप के अनुभवों के आधार पर निर्मित था तथा बाद में सभी मानवमात्र के लिए वैध रूप में व्यापक हो गया। लेकिन क्या ऐसा कोई सिद्धांत है, जो औपनिवेशिक समाज की व्याख्या न्यायोचित तरीके से करे? इस सवाल के जवाब के रूप में टॉम नैर्न सामने आते हैं। अपनी किताब, 'ब्रेक-अप ऑफ ग्रेट ब्रिटेन' में टॉम नैर्न ने राष्ट्रवाद की व्याख्या औद्योगिक यूरोपीय समाज के लिहाज से नहीं बल्कि औपनिवेशिक समाजों के ख्याल से की है।

टॉम नैर्न आधुनिकतावादी होने के साथ साथ सार्वभौमवादी भी हैं। वह आधुनिकतावादी इस तरह से हैं कि उनकी नजर में राष्ट्रवाद पिछली दो सदियों की उपज है। वह सार्वभौमवादी इसलिए हैं क्योंकि वह राष्ट्रवाद को आधुनिक विष्व के सामान्य ऐतिहासिक विकास की खासियत के रूप में देखते हैं। उनके लिए, राष्ट्रवाद मानव विकास के किसी खास चरण का एक अनिवार्य तथा एकीकृत परिणाम है। स्पष्ट शब्दों में कहा जाये तो नैर्न राष्ट्रवाद को विष्व तथा पूंजीवाद में अंतर्निहित असमान अविकास के पूंजीवादी रुपांतरण के रूप में देखते हैं। इस सिद्धांत का सार संक्षेप कुछ इस तरह है:

18वीं सदी के आखिर तक यूरोप के कुछ निश्चित क्षेत्रों में विष्व पूंजीवाद का उदय हुआ, जिसने 'समान विकास' के मिथक को जन्म दिया। यह मिथक था कि पूंजीवाद धीरे धीरे पूरे विष्व को अपने आगोष में ले लेगा। लेकिन सच्चाई यही थी कि ऐसा होना संभव ही नहीं था। पूंजीवाद को दरअसल एक 'अभिकेन्द्र' (यूरोप के कुछ विकसित पूंजीवादी देश) को सृजित करते हुए तथा नये औद्योगिक पूंजीवादी विष्व अर्थव्यवस्था के बाहर के क्षेत्र को परिधि के रूप में विकसित करना था जो अभिकेन्द्र की सेवा में था।

इस परिधि (एशिया और अफ्रीका के औपनिवेशिक समाज) में जल्द ही असमानता के तीव्र अपमान को महसूस किया गया। इन समाजों के संभ्रांत ने शीघ्र ही कहना शुरू कर दिया कि इस प्रकार की 'प्रगति' का मतलब उनके लिए उपनिवेशवादी 'वर्चस्व' है। इसके अलावा, यह वर्चस्व सिर्फ शासकों और शासन के द्वारा था, जो विदेशी या बाहरी थे। दूसरे शब्दों में, पूंजीवाद ने उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद की एक प्रणाली का सृजन किया। यह इस सोच के साथ था कि मानवतावाद के आगे बढ़ने का पर्याय 'पश्चिमीकरण' था। औपनिवेशिक समाज में, संभ्रांतों ने माना कि नये तंत्र में उनकी खास जगह है तथा इस तंत्र में उनका शामिल होना बिल्कुल संभव नहीं था। उपनिवेश में लोगों की एक बड़ी संख्या को शासन के इस नये खेल से अलग रखना था। इस नये तंत्र में उनका सिर्फ शोषण होना था और किसी भी अवस्था में उनकी हिस्सेदारी नहीं होनी थी।

इस तरह औपनिवेशिक समाज में संभ्रांतों के सामने स्पष्ट हो गया कि पूंजीवाद के दो चेहरे थे। एक ओर जहाँ यूरोपीय संसार में इससे धन-दौलत, समृद्धि तथा गतिशीलता आयी, दूसरी ओर इससे आर्थिक विषमता तथा उपनिवेश के लोगों का राजनीतिक शोषण भी हुआ। राष्ट्रवाद इसी स्थिति के खिलाफ एक प्रतिक्रिया था। औपनिवेशिक समाज के संभ्रांतों को वर्चस्व, शोषण तथा विलगन वाली इस स्थिति के खिलाफ होने वाले प्रतिरोध को संगठित करने के लिए पहल करनी पड़ी। इसका मतलब एक ऐसे राष्ट्रीय समुदाय के संगठन, उनकी गतिशीलता तथा उनका निर्माण से था, जो किसी भी तरह के विभेदकारी चरित्र से ऊपर हो तथा उसे इस समुदाय की पहचान पर अपना ध्यान केन्द्रित कर सके। इन संभ्रांतों के पास कोई आधुनिक आर्थिक तथा राजनीतिक संस्थाएं नहीं थी, जिनके साथ मिलकर इस समुदाय को निर्माण करते। इसलिए इसे साझे विरासत वाले अतीत, भाषण, लोक गीत, चमड़ी के रंग आदि के आधार पर किया जाना था। 'राष्ट्रवाद के इस नये मध्यवर्ग बौद्धिकों को इतिहास में जनसमूह को शामिल करना था: तथा इसके लिए बनाये जा रहे आमंत्रण की भाषा भी वही होनी थी, जिसे सामान्य जनसमूह समझ सके। इस तरह लोगों की भाषा पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इस नये जज्बे ने संभ्रांतों को बड़े पैमाने पर सामान्य जनता से जोड़ दिया तथा विदेशी वर्चस्व के खिलाफ आम लोगों को एकजुट कर दिया एवं इस वर्चस्व से मुक्ति पाने के लिए उन्हें एकजुटता प्रदान करते हुए एक सामान्य संघर्ष के साथ जोड़ दिया। राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद के खिलाफ संभ्रांतों तथा जनमूहों के संयुक्त संघर्ष की प्रक्रिया का एक स्वाभाविक उपज था।

यही टॉम नैन के सिद्धांत का वास्तविक सार है। जैसा कि आप देख सकते हैं, राष्ट्रवाद की यह एक आवश्यक आधुनिकतावादी समझ है, लेकिन अन्य आधुनिकतावादी समझ से यह बहुत भिन्न है, जिनका ध्यान यूरोप पर केन्द्रित होता है। जैसा कि आप पाते हैं टॉम नैन राष्ट्रवाद के भारतीय अनुभव के बेहद करीब हैं। उनका सिद्धांत सामान्य रूप से उपनिवेश विरोधी राष्ट्रवाद तथा खासकर भारतीय राष्ट्रवाद के लिए एकदम सटीक है।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हमें आवश्यक रूप से न सिर्फ इस बड़े सिद्धांत के बारे में चर्चा करना चाहिए, बल्कि राष्ट्रवाद के अन्य विभिन्न सिद्धांतों के बारे में भी बातें करनी चाहिए। उन सिद्धांतों के बारे में भी जो आधारभूत संकल्पना या प्रासंगिता के बारे में

बातें करते हैं (जैसा कि आधुनिकतावादी करते हैं), ये सिद्धांत राष्ट्रवाद की परिघटना के लिए एकदम अलग व्याख्या देते हैं। कुछ विचारों तथा सिद्धांतों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तथा कुछ का ध्यान ठोस प्रक्रियाओं पर होता है। कुछ राष्ट्रवाद को पूंजीवाद के हृदय के भीतर से उत्पन्न हुआ मानते हैं तथा कुछ इसे पूंजीवाद के विषम विस्तार के परिणाम तथा साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के प्रति एक प्रतिक्रिया के रूप में देखते हैं। सिद्धांतों में इस तरह की भिन्नता स्वाभाविक है। राष्ट्रवादी अनुभव इतने भिन्न-भिन्न हैं कि किसी भी एकलौते सिद्धांत से उम्मीद नहीं की जा सकती है कि सभी तरह की स्थितियों की व्याख्या कर सके।

## 1.5 भारतीय राष्ट्रवाद

भारतीय राष्ट्रवाद के बारे में क्या खयाल है? क्या यह स्थापित सिद्धांतों के खांचे में सटीक बैठता है या इसे अपने आप में एक भिन्न सिद्धांत की दरकार है? सबसे अच्छा होगा कि भारतीय राष्ट्रवाद पर सामान्य रूप में राष्ट्रवाद के विशेष अध्ययन (केस स्टडी) के रूप में ही नहीं बल्कि महत्वपूर्ण और विशेष केस स्टडी के रूप में नजर डाला जाए। जरूरी नहीं है कि भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या के लिए किसी अलग सिद्धांत का निर्माण किया जाए, बल्कि राष्ट्रवाद को लेकर प्रचलित सामान्य सिद्धांत के प्रारूप में थोड़ा बहुत फेरबदल करना होगा ताकि भारतीय केस स्टडी को सुविधाजनक बनाया जा सके। संभवतः भारतीय अनुभव के इन दो कारकों पर अलग से नजर डाला जाए—ये दो कारक हैं—भारतीय घटक (विशेष) तथा राष्ट्रवादी घटक (सामान्य)। इन दोनों कारकों को इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद के रूप में और भारतीय राष्ट्रवाद के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

सामान्य कारक पर पहले गौर करते हैं। आवश्यक है कि भारतीय राष्ट्र के आधुनिकता पर खास तौर पर दृष्टिपात किया जाये। यद्यपि भारत पुरानी सभ्यता वाला समाज है, जिसका सदियों पुराना अनवरत इतिहास है, लेकिन भारतीय राष्ट्र एक आधुनिक परिघटना है। अतीत में भारत के विषाल भूभाग पर कई बड़े साम्राज्यों का शासन रहा (मौर्य, गुप्त, मुगल) तथा इन राजवंशों के शासन की निरंतरता ने पूर्व आधुनिक काल के दौरान भारतीय पहचान को बनाने में बड़ी सहायता की। यह कहना सही नहीं होगा कि 19वीं सदी से पहले किसी तरह का कोई भारतीय राष्ट्र था। इसलिए जहां एक भारतीय समाज या भारतीय सभ्यता निष्चित रूप से अस्तित्व में था, वहीं भारतीयों के राष्ट्रीय समुदाय के रूप में कोई पहचान नहीं थी। 19वीं तथा 20वीं सदी में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शर्तों के अंतर्गत भारतीय राष्ट्रवाद के विचार द्वारा एक भारतीय राष्ट्र की संकल्पना सामने आयी। इसलिए हम कह सकते हैं कि इतिहास के एक चरण के संदर्भ में राष्ट्रवाद की सामान्य व्याख्या भारतीय राष्ट्रवाद को समझने के लिए भी प्रासंगिक होगी। भारतीय राष्ट्रवाद प्रजातीय या धार्मिक की अपेक्षा क्षेत्रीयता वाला था। इसका मतलब था कि भारतीयता को लेकर किया जाने वाला दावा क्षेत्रीयता के आधार पर था, न कि धार्मिक आधार पर। जो कोई भी भारत की भूमि पर रहता था, उसे राष्ट्रीय समुदाय का सदस्य माना गया। इस समुदाय के पास न तो कोई समान संस्कृति थी और न ही कोई समान भाषा थी (जिस तरह स्टालिन की परिभाषा में इसे दर्शाया गया), जो उसे राष्ट्रीय समुदाय बनने में सहायक सिद्ध होते, लेकिन उनके पास ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अंतर्गत होने वाला समान आर्थिक शोषण जरूर था।

कुछ सामान्य विशेषताओं से अलग, भारतीय राष्ट्रवाद में कुछ अपनी तरह की खासियतें थीं। 19वीं सदी के उत्तरार्ध में, कुछ ब्रिटिश विद्वान तथा नृवैज्ञानिक द्वारा भारतीय बौद्धिक वर्गों को लगातार कहा जा रहा था कि भारतीय राष्ट्र न कभी था और न कभी हो सकता था। ब्रिटिश विद्वानों में से एक जॉन स्ट्रेची ने अपनी किताब, *इंडिया: इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड*

प्रोग्रेस (1888) में लिखा है: 'भारत को समझने के लिए यह पहला तथा सबसे जरूरी चीज है— कोई भारत था ही नहीं या भारत नामक देश का कोई अस्तित्व रहा ही नहीं, यूरोपीय विचारों के आधार को अपनाते हुए उन्होंने कहा कि किसी भी तरह की एकता, भौतिक, राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक यहां है ही नहीं, भारत राष्ट्र नाम की कोई चीज नहीं है और न ही भारत के लोग जैसा कोई विचार है, जिसके बारे में हम लोग हमेशा सुनते हैं।' इसी तरह जॉन सेली ने अपनी किताब, 'द एक्सपैन्शन ऑफ इंग्लैण्ड (1833)' में लिखा: 'भारत नामक राष्ट्र की कल्पना एक भूल पर आधारित है तथा राजनीति विज्ञान का लक्ष्य इसे नष्ट कर देने का होता है। भारत कोई राजनीतिक नाम नहीं है, बल्कि सिर्फ यूरोप या अफ्रीका की तरह एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है। यह एक राष्ट्र के भूभाग तथा एक भाषा को रेखांकित नहीं करता है, बल्कि यह कई राष्ट्रों तथा भाषाओं के भूभाग को दर्शाता है'। इन शब्दों में व्यापक रूप से भारतीय राष्ट्र की अंतर्निहित असंभावना को उभारा गया। भारत सिर्फ एक 'भौगोलिक अभिव्यक्ति' के रूप में चिह्नित किया गया। भारत पर ब्रिटिश औपनिवेशिक बहस भारत की संस्कृति, भाषायी तथा धार्मिक विविधता पर जोर देती थी तथा इस विविधता को भारतीय राष्ट्रवादिता के विकास में एक बड़ी बाधा के रूप में देखती थी। इस तरह की बातों पर प्रतिक्रिया करने का एक तरीका अतीत में भारतीयों की पौराणिक एकता की तरफ लौटना हो सकता था। लेकिन ज्यादातर भारतीय बौद्धिक 'राष्ट्र नहीं होने' के आरोप को 'सदा से एक राष्ट्र होने' की मुखरता से जवाब देने की शैली से बचते रहे। वो अन्य सीमा से बाहर कभी नहीं गए। बिपिन चंद्र लिखते हैं: 'भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को शुरू करने वाले 19वीं सदी के बौद्धिकों ने कभी भी ब्रिटिश सरकार के इस रुख से इन्कार नहीं किया कि भारत कभी राष्ट्र ही नहीं था। वे लगातार स्वीकार करते रहे कि भारत अभी तक एक सामान्य इतिहास, भूगोल तथा सामान्य संस्कृति के तत्वों के बिना एक राष्ट्र के रूप में निर्मित नहीं हो सका था। वे यह भी स्वीकार करते थे कि राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद अतीत में भी भारत में वजूद में नहीं थे। वे इस बात को मानते थे कि भारत में बहुल पहचान का अस्तित्व है तथा भारत में एकरूपता नहीं है। वे यह भी स्वीकार करते थे कि राष्ट्र कोई स्वाभाविक या अनिवार्य परिघटना नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक सृजन है। लेकिन वे इस बात से इन्कार करते थे कि भारत एक राष्ट्र नहीं हो सकता। वे साम्राज्यवादी व्यंग्यों का करारा जवाब इस दावे से देते थे कि ऐतिहासिक ताकतें भारतीयों को एक साथ लाकर उन्हें आपस में जोड़ रही हैं तथा भारत अब एक राष्ट्र होने की प्रक्रिया में प्रवेश कर गया है। वे कहते थे कि भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रियाधीन है, जिसका उद्घरण सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की आत्मकथा का शीर्षक है'। (बिपिन चंद्र, 'द मेकिंग ऑफ द इंडियन नेशन', इंडिका, मार्च 2014, पृष्ठ संख्या 21)।

और इसलिए 19वीं सदी के भारतीय चिंतकों के चिंतन की एक महत्वपूर्ण विशेषता राष्ट्र तथा सभ्यता के बीच फर्क करना था तथा भारतीय राष्ट्र की नवीनता को उभारना था। वे तर्क देते थे कि भारत की सभ्यता बहुत पुरानी है, लेकिन यह एक नया राष्ट्र है। यहां तक कि जो नेता भारतीय सभ्यता की सर्वोच्चता की स्थापना में लगे रहते थे तथा भारत के अतीत को महिमामंडित करते नहीं थकते थे, वे भी भारतीय राष्ट्र की नूतनता को स्वीकार करते थे। स्वामी विवेकानंद ने 1896 में कहा : 'भारत विभिन्न प्रजातियों के बावजूद एक राष्ट्र बन रहा है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि इनकी विभिन्नता यूरोपीय लोगों की भिन्नता से कम नहीं है'। 19वीं सदी का भारतीय नेता लगातार 'नया राष्ट्र', 'नया भारत', 'नवीन राष्ट्रीय भावना', 'राष्ट्रीयता के विकास' इत्यादि को इंगित करते रहते थे। इसलिए कहा जा सकता है कि 19वीं सदी तक भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा एक मानक राष्ट्रवादी उपाय के रूप में 'परंपरा की खोज' का इस्तेमाल नहीं किया गया था। भारतीय राष्ट्र की पुरातनता के बनिस्पत नयेपन पर ध्यान केन्द्रित किया गया। हालांकि बाद में 20वीं सदी में कुछ नेताओं ने इस बात को कहना शुरू कर दिया कि भारतीय राष्ट्र निरंतर रहा है तथा भारतीय इतिहास में इसकी

मौजूदगी हमेशा से रही है। वे भारत के अतीत तथा उसकी परंपरा को भी गौरवान्वित करते थे तथा उन्हें भारत के वर्तमान पर उसके प्रभाव को हमेशा दर्शाते रहते थे।

इस विशेषता से अलावा भारतीय राष्ट्रवाद बहुस्वीकृत, सहज तथा सामान्य था। यह इस मायने में बहुस्वीकृत था कि भारतीय राष्ट्रवादी नेतृत्व स्वीकार करता था कि भारत में व्यापक रूप से विविधता है, लेकिन वे इस बात से इन्कार करते थे कि यह राष्ट्रीयता की तरफ की यात्रा में किसी तरह की बाधा या कमजोरी है। अन्य शब्दों में, भारतीय राष्ट्र के उस विचार को उन्होंने भरपूर प्रोत्साहन दिया जिसके अंतर्गत सांस्कृतिक एकात्मकता की अपेक्षा सांस्कृतिक विविधता है। संभवतः भारतीय विविधता तथा राष्ट्रवाद से इसे जोड़ने वाले सबसे शानदार बयान महात्मा गांधी की तरफ से आया, जिन्होंने अपनी साप्ताहिक पत्रिका हरिजन में 1940 में लिखा: 'भारत एक बड़ा देश और विषाल राष्ट्र है, जो विभिन्न संस्कृतियों से बना है, जो एक दूसरे से मिलकर बने हैं तथा सभी एक दूसरे के पूरक हैं। अगर मैं इस प्रक्रिया के पूर्ण होने का इंतजार कर सकूँ, तो हमें अवश्य इंतजार करना चाहिए। यह पूर्णता हमारे जीवनकाल में तो पूरी नहीं होगी। लेकिन मैं इस विश्वास के साथ मरना पसंद करूँगा कि ऐसा अपने समय के पूर्ण होने के बाद संभव हो पायेगा'। गांधी जी के इस बयान से साफ है कि भारतीय राष्ट्रवादी नेतृत्व इस बात को पूरी तरह स्वीकार करते थे कि भारत का एक राष्ट्र के रूप में बनने की प्रक्रिया काफी लंबी थी तथा पूरी होने से अभी बेहद दूर थी। और इस तरह भारत की विविधता भारत की राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधा कदापि नहीं थी। राष्ट्रवाद तथा बहुलतावाद आपस में जुड़ सकते हैं। भारत जब स्वतंत्र हुआ तथा 1950 में जब इसे एक नया संविधान मिला, तब संविधान निर्माताओं ने इसे स्वीकार करने से इन्कार किया कि भारत की राष्ट्रभाषा किसी एक भाषा को बनाया जाए। इसके बजाय उन्होंने 14 महत्वपूर्ण भाषाओं को सूचिबद्ध किया तथा उन सबको राजकीय भाषा का दर्जा दिया। भारत की राजकीय भाषा की संख्या बढ़कर अब 22 हो चुकी है।

भारतीय राष्ट्र उल्लेखनीय रूप से सहज रहा है। सच है कि सभी राष्ट्रवाद आवश्यक रूप से समरूप शक्तियाँ हैं तथा उनकी कोषिष होती है कि राष्ट्रीय संस्कृति का एक विषाल पुल बने, जिसमें सभी स्थानीय तथा बहुसंख्यक संस्कृतियाँ इसमें खप जायें। यह विष्व के ज्यादातर राष्ट्रों की वास्तविक कहानी है। लेकिन तुलनात्मक रूप से भारतीय राष्ट्र कहीं ज्यादा सहज है। यह 'सर्वानुमति' के विचार पर आधारित था, लेकिन इस सर्वानुमति को ऊपर से किसी पर थोपा नहीं गया। साम्राज्यवादी ताकत के विरोध काल तथा स्वतंत्रता के दौरान भी राष्ट्रीय एकता को सहज तरीके तथा उपायों के माध्यम से ही प्रोत्साहित किया गया। इस खंड का समापन करते हुए कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद की निश्चित विशेषताएं हैं, जो राष्ट्रवाद के सामान्य प्रारूप को पुष्ट करती हैं, जैसा कि सिद्धांतों में भी दर्शाया गया है। लेकिन इसकी अपनी विशेषताएं भी हैं, जिसे किसी सिद्धांत से आच्छादित नहीं किया जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सामान्य सिद्धांत एवं राष्ट्रवाद के मूल सिद्धांत अपने लचीलेपन को बनाये रखें ताकि विष्व के विभिन्न भाग में विविध तथा विभिन्न राष्ट्रवादी अनुभवों को स्वयं में समाहित करने की क्षमता हासिल कर सकें।

## 1.6 सारांश

इस इकाई ने राष्ट्रवाद की परिघटना के उभार के लिए कुछ बड़ी व्याख्याओं पर रौषनी डाली है। इस इकाई में निम्नलिखित बिन्दु बताये गए हैं:

- हमारी पड़ताल के लिए पूर्ण रूप से आवश्यक राष्ट्र, राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र राज्य जैसे पदों की प्रारंभिक समझ के लिए व्याख्याएं दी गई हैं। राष्ट्र को एक बहुत खास तथा विशेष मानव समुदाय के रूप में समझा जाना चाहिए। राष्ट्रवाद एक राजनीतिक सिद्धांत है,



जो हमें बताता है कि एक राष्ट्रीय समुदाय को अपना प्रतिनिधि राज्य चाहिए था। राष्ट्र राज्य इसका एक उदाहरण है, जो राज्य उस राष्ट्र तथा उसके भीतर से पैदा होता है। इसे अलग रूप में रखने के लिए मानव समुदायों के विभिन्न प्रकारों ने धरती को बांटा है। राष्ट्र इसी तरह का एक मानव समुदाय है, लेकिन यह एक बहुत अद्भुत तथा विशेष समुदाय है, जो परिदृश्य पर एक खास स्थिति में 19वीं सदी में सामने आता है। राष्ट्र तथा राष्ट्र राज्य दोनों के बीच के जुड़ाव को तभी समझा जा सकता है, जब राष्ट्रवाद के साथ इसे संदर्भित किया जाये। राष्ट्रवाद इन दोनों को साथ ले आता है।

- राष्ट्रवाद के सिद्धांत को व्यापक रूप से आधुनिकतावादी तथा गैर आधुनिकतावादी में विभाजित किया गया है। आधुनिकतावादी सिद्धांत राष्ट्रवाद को 19वीं तथा 20वीं सदी के दौरान के विष्व इतिहास से जुड़ी हुई एक परिघटना के रूप में देखता है। कुछ गैर आधुनिकतावादी सिद्धांत राष्ट्रवाद को एक 'प्राकृतिक मानवीय भावना' के रूप में देखना चाहते हैं तथा अन्य किसी भी तरह की व्याख्या की जरूरत महसूस नहीं करते हैं। कुछ अन्य राष्ट्रवाद को एक दीर्घकालिक विकास, सदियों के विस्तार के रूप में देखते हैं, जिसमें विभिन्न सांस्कृतिक या भाषिक समुदाय अपने आपको एक राष्ट्रीय समुदायों में विकसित करते हैं। राष्ट्रवाद का एक प्रभावशाली आधुनिकतावादी सिद्धांत अर्नेस्ट गेलनर द्वारा दिया गया है। गेलनर राष्ट्रवाद के उभार को विष्व के कृषक समाज से औद्योगिक समाज में रूपांतरण के रूप में चिह्नित करते हैं। नये औद्योगिक समाज का कार्यकलाप कुछ इस तरह था कि उसने बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय समुदायों के सृजन को आवश्यक बना दिया। अन्य शब्दों में, औद्योगिक समाज के क्रियाकलापों तथा उसकी विशेषताओं में ऐसा कुछ था, जो पूरे विष्व में एक शक्ति के रूप में राष्ट्रवाद के उभार के रूप में सामने आया।
- हालांकि, गेलनर के सिद्धांत में एक बड़ी समस्या थी। जैसा कि गेलनर ने औद्योगिक समाज की विशेषताओं को रेखांकित किया, वह पूरी तरह विकसित यूरोपियन समाजों में संचालित हो सकता था। इसके विपरीत सही राष्ट्रवाद सही मायने में एक वैश्विक शक्ति के रूप में उभरा तथा यूरोप के साथ-साथ इसका उभार विष्व के अविकसित गैर यूरोपीय क्षेत्रों में भी हुआ। इसलिए सवाल था कि एशिया तथा अफ्रीका के देशों में राष्ट्रवाद के उभार की व्याख्या किस तरह से की जाये, जिन्होंने औद्योगीकरण के माध्यम से न तो अभी तक विकास तथा न ही समृद्धि प्राप्त किया था।
- इस सवाल का जवाब टॉम नैर्न के सिद्धांत से मिला। नैर्न राष्ट्रवाद का सिद्धांत देने वाले एक अन्य आधुनिकतावादी थे। टॉम नैर्न ने भी गेलनर की तरह राष्ट्रवाद को वैश्विक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के क्रियाकलापों के साथ जोड़ा। लेकिन गेलनर के विपरीत, उन्होंने अपनी व्याख्या की तलाष विकास, शिक्षा तथा औद्योगिक समाज की गतिशीलता में नहीं की, बल्कि उन्होंने इसकी तलाष औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप सभी समुदायों को मिली विषमता तथा विस्थापन में की। इस विषमता ने विष्व को 'यूरोपीयन अभिकेन्द्र' तथा एक 'एशियाई तथा अफ्रीकी परिधि' में विभाजित कर दिया। दूसरे शब्दों में, पूंजीवाद ने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को जन्म दिया। परिधि के संग्रान्तों ने खासकर इस विषमता के अपमान को महसूस किया। इसका मुकाबला करने के लिए उन्होंने एकता तथा एकात्मकता के ख्याल से एक विषाल समुदाय को सृजित किये जाने का कार्य किया। तमाम सीमाओं से परे जाकर उन्होंने औपनिवेशिक वर्चस्व के खिलाफ लड़ाई लड़ी। इसी प्रक्रिया के दौरान इन उपनिवेशों में राष्ट्रवाद उभरा।
- निस्संदेह टॉम नैर्न का सिद्धांत उस वास्तविक प्रक्रिया के बेहद करीब की व्याख्या करता है, जिसमें 19वीं तथा 20वीं सदी में भारतीयों के राष्ट्रीय समुदाय का विकास

हुआ। भारतीय राष्ट्रवादी अनुभव को सबसे अच्छे तरीके से तभी समझा जा सकता है, जब हम इसे 'सामान्य' और 'विशेष' कारकों में विभजित करें। यह सामान्य कारक अन्य समुदायों में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया की तरह ही व्यापक रूप से समान होगा। लेकिन, भारतीय अनुभव के पास अपनी तरह की विशेषताएं हैं। यह इकाई सामान्य तथा विशेष दोनों तरह के कारकों पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

- संक्षेप में, भारतीय राष्ट्रवाद को उचित रूप से समझने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए जरूरी है कि दो बातों पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। पहली बात कि हमें सामान्य स्थितियों पर नजर बनाये रखने तथा वैश्विक शक्तियों को समझने की आवश्यकता है, जो राष्ट्रवाद के उभार के परिणाम के रूप में सामने आता है। ठीक उसी तरह, हमें विशेष भारतीय स्थितियों पर ध्यान केन्द्रित करने की जरूरत है, जो भारतीयों के एक राष्ट्रीय समुदाय के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। राष्ट्रवाद के सिद्धांत की आवश्यकता है कि वो सामान्य तथा सामाजिक-विशेष कारकों को ध्यान में रखे।

---

### 1.7 अभ्यास

---

- 1) राष्ट्र तथा राष्ट्रवाद के उभार को लेकर आधुनिकतावादी सिद्धांतों की व्याख्या करें।
- 2) राष्ट्र तथा राष्ट्र-राज्य की विभिन्न परिभाषाओं की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
- 3) राष्ट्रवाद के गैर आधुनिकतावादी सिद्धांत क्या हैं ? उनका महत्व क्या है ?